ISSN: 2249-894X Impact Factor : 3.1402(UIF) Volume - 5 | Issue - 12 | September - 2016

Review Of Research

साहित्य और समाज

प्रा.डॉ. गंगाधर धुळप्पा बिराजदार
हिंदी विभाग प्रमुख, दयानंद कला एवं शास्त्र महाविद्यालय, सोलापुर.

समाज – अर्थ एवं परिभाषा :–

सामान्यतः 'समाज' शब्द से अभिप्राय कुछ व्यक्तियों के समूह से है। हिंदी के अधिकांश शब्द कोशों में भी 'समाज' का अर्थ ऐसा ही मिलाता है। 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में 'समाज' का अर्थ इस प्रकार है – समाज – (वि.) (सं.) 1. समूह /गिरोह/ 2. एक स्थानपर रहनेवाला अथवा एक ही प्रकार का कार्य करनेवाले लोगों का वर्ग दल या समूह / समुदाय / 3. किसी विशिष्ट उद्देश से स्थापित की हुई सभा/सोसायटी/ 'आधुनिक हिंदी शब्दकोश' के अनुसार समाज शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ–व्याप्ति निम्नलिखित है – समाज – मु. स.–

1. संघ, संघात, समाष्टि, सभा, परिषद, गोष्ठी।
2. मानव समूह, जन समुदाय, लोकजन ।
3. प्राचीन भारत में सार्वजनिक सभा, उत्सव समज्या।[2] 'आदर्श मराठी शब्दकोश' में भी समाज के लिए । सभा, समूह, जमाव
3. समुदाय, साग, संग्रह जैसे शब्द दिये गये हैं ।[3] इस प्रकार विभिन्न शब्दकोशों के आधारपर समाज का सामान्य अर्थ है – समूह, समुदाय, सभा, संस्था आदि।

भारतीय एवं पाश्चात्य विव्दानों ने 'समाज' की परिभाषाएँ देकर उसकी विशेषताओंपर प्रकाश डाला है। डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन ने 'समाज' की परिभाषा इस प्रकार ही है – ''मनुष्य को अपना मानवीय अस्तित्व बनाये रखने के लिए अन्य मनुष्यों के साथ रहने की परम आवष्यकता है। इसके लिए उसे अपने आसपास के मनुष्यों के साथ संबंध स्थापित करना ही पडेगा। व्यक्तियों के इन्हीं पारस्परिक संबंधों के जाल को 'समाज' कहते हैं।[4] डॉ. सुरेश गायकवाड के अनुसार ''समाज सामाजिक संबंधों का पार्श्व है। मनुष्य की पारस्परिक कियाएँ, अंतः कियाएँ एवं प्रतिकयाएँ ही समाज का निर्माण एवं विकास करती है। इनके माध्यम से ही समाज की पीढी दूसरी पीढी को उसके कल्याण के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करती है।''[5] सुप्रसिध्द पाश्चात्य विव्दान मैकाइवर नें 'समाज' शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – 'हम समाज शब्द का अत्यधिक विस्तृत अर्थ में प्रयोग करेंगे कि समाज प्रत्येक प्रकार एवं हर अंश के संबंधों का समावेश करता है, जो मनुष्यों व्दारा किसी दूसरे सामाजिक प्राणी से या मनुष्य से स्थापित किये जाते हैं। 'समाज' शब्द का जब विशेषणरहित प्रयोग किया जाता है। तो उसका अभिप्राय सामाजिक संबंधों की पूर्ण व्यवस्था से होता है।''[6] अंतर्राष्ट्रीय इन्साय क्लोपीडिया ऑफ दि सोशियल सायन्स के अनुसार ''समाज वह मानव समूह है, जो अपने व्यवहार की दीर्घकालीन व्यवहार परंपरा का निर्माण करता है। समाज की जीवन अवधि व्यक्ति की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।''[7]

सारांशतः हम कह सकते हैं कि समाज व्यक्ति रूपी इकाइयों का वह बहत्तर समुच्चय है, जो अपने हित, अपनी सुरक्षा, अपने विकास और अपनी व्यवस्था के लिए हितकारी प्रणालियों का विधान करके सामूहिक रूप से उसका अनुपालन करता है।

साहित्य और समाज :–

इस तथ्य को प्रायः सभी विव्दान निस्संकोच स्वीकार करते हैं कि साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध है, फिर भी साहित्य के

कुछ विव्दानों को इस तथ्य के स्वीकारने में आपत्ति होती है। भाववादी आदर्शवादी कला–समीक्षक साहित्य को समाज निरपेक्ष घोषित करते हैं और कहते हैं कि साहित्य एक स्वतंत्र विशिष्ट चेतना या भाव जगत की उपज है। वे उसे दैवीय प्रतिभा या किसी अलौकिक शक्ति की प्रेरणा व्दारा उत्पन्न मानते हैं। ''कला कला के लिए'' सिध्दांत इनका पोषक है। इनका कहना है कि यदि साहित्य या कला को सामाजिक जीवन से जोड़ा गया या जीवनोपयोगी बनाया गया तो इसके विकास में अवरोध उत्पन्न हो जायेगा और तब कला–कला न रहकर उपयोग का साधनमात्र बनकर रह जायेगी। वे साहित्यपर किसी बाह्य–जगतया पदार्थ का दबाव अनुचित मानते हैं।

इन भाववादी–आदर्शवादी कला समीक्षकों से यह प्रश्न किया जा सकता है कि साहित्यकार साहित्य का सृजन किसी दैवीव प्रतिभासंपन्न होने या अलौकिक शक्ति की प्रेरणा करते हैं तो फिर इसका क्या कारण है कि वही दैवीय प्रतिभासंपन्न साहित्यकार एक ही कोटी का साहित्य नहीं रच पाता 1. इसकी या तो सृजन करने की शक्ति ही समाप्त हो जाती है या घटिया किस्म का साहित्य ही वह लिख पाता है। तब वह उसकी दैवीय देन कहाँ चली जाती है। यदि साहित्यकार सचमुच दैवीय प्रतिभासंपन्न होते तो निराला के साहित्यिक जीवन में उतार – चढ़ाव न आते। रूसी समाजशास्त्री प्लेखनोव ने ''कला कला के लिए'' सिध्दांतपर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि '' कला कला के लिए'' का सिध्दांत तभी विकसित होता है। जब कलाकार अनुभव करता है कि उसके लक्ष्यों में और उस समाज के लक्ष्यों में जिसका वह सदस्य है, एक निराशाजनक अन्तर्विरोध विदयामान है। जब कलाकार अपने समाज के प्रति आक्रोश अनुभव करे और उसे बदल पाने की कोई आशा नजर नआये।[8]

साहित्य और समाज के परस्पर संबंध की पुष्टी साहित्य के प्रयोजनोंपर विचार करनेपर भी हो जाती है। आ. मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में साहित्य के छः प्रयोजन बतलाये हैं। यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान, अमंगल निवारण, रसोत्पत्ति या आनंद प्राप्ति तथा पत्नी समान उपदेश /

''काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहार विदे शिवेत रक्षयते।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्ता सम्मितयोपदेश युजे।।''[9]

इन सभी प्रयोजनों में ''आनंद प्राप्ति'' प्रयोजन के अतिरिक्त शेष सभी प्रयोजनोंका संबंध सामाजिक जीवन से ही है। 'यह प्राप्ति' प्रयोजन से तात्पर्य है कि साहित्यकार का समाज में प्रतिष्ठित होना और वही साहित्यकार समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है जो ऐसे साहित्य की रचना करता है जिससे उनका जीवन अधिक संपन्न, समृध्द बने या उनको नयी दिशा प्रदान करें। ''अर्थ प्राप्ति'' प्रयोजन का अर्थ है साहित्यकार व्दारा साहित्य को अर्थप्राप्ति अथवा जीविकोपार्जन का साधन बनाना। साहित्य को धन प्राप्ति का साधन तभी बनाया जा सकता है, जब रचनाकार समाज की मान्यताओं को स्वीकारते हुये उसकी आवश्यकतानुसार ही अपने साहित्य की रचना करता है। ''व्यवहार ज्ञान'' प्रयोजन आस्वादक को केंद्रित करके किया गया है। साहित्य के अध्ययन से पाठक को व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति होती है। साहित्याकार जब तक स्वयं समाज के संपर्क से सामाजिक परंपराओं का ज्ञानार्जन नहीं करता, तब तक वह उसे साहित्य में कैसे सँजो सकता है ? ''अमंगल निवारण'' प्रयोजन का संबंध तो सीधा समाज से है। आ. रमचंद्र शुल्क ने भी ''काव्य में लोकमंगल की भावना'' से साहित्य का प्रयाजन समाजोत्थान के लिए माना है, जब साहित्यकार का प्रयोजन ''कान्ता सम्मित उपदेश देना होता है। तो वह अपने विचारों, भावों आदि की अभिव्यक्ति सरस, कोमल तथा लक्षणार्थ शब्दों में करता है। जिससे समाज उसको सहर्ष तथा सहजरूप में स्वीकार कर ले।

मार्क्सवादी साहित्य चिंतकों ने न केवल साहित्य को अपितु साहित्य की निर्मिति के उपकरण – इंद्रिय बोध, भाव, विचार, कल्पना तथा अभिव्यक्ति के साधन–बिंब प्रतीक, भाषा आदि को भी सामाजिक जीवन के संपर्क से ही विकसित माना है। साहित्यकार के विचार, भाव आदि सामाजिक परिवेश में ही उत्पन्न तथा विकसित होते हैं। भाषा तो एक सामाजिक उपादान है ही। बिंब, प्रतीक आदि भी किसी न किसी रूप में बाह्य जगतसे अपनी काया का निर्माण करते हैं। अतः साहित्यकार चाहे कितना ही समाज से तटस्थ रहने का दावा करें परंतु उसकी रचना पर बाह्य–जगत् का प्रभाव पडे. बिना नहीं रह सकता।

डॉ. नामवर सिंह जी ने साहित्य और समाज का संबंध बताते हुये लिखा है। ''समाज से साहित्य का संबंध कुछ–कुछ वही है जो धरती से फुल का है। मूल धरती से उत्पन्न होता है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसके डाल, पात, पंखुडी, वर्ण, गंध आदि मिट्टी के हैं, कि उससे मिट्टी की सी ही सोंधी गंध आती है और रंग भी मटमैला होता है। धरती का रूप–रस फूलों में नया वर्ण, गंध उत्पन्न करता है। इसी तरह साहित्य में भी समाज ज्यों का त्यों नही झलकता, बल्कि रूपांतरित रूपमें अंतर्निहित रहता है।''

वस्तुतः साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध इतना सहज और स्वयंसिध्द है कि यह किसी विचारधारा विशेष का ही निष्कर्ष नहीं माना जा सकता, अपितु सभी संतुलित एवं समग्र दृष्टीवाले साहित्यकार व आलोचक इस संबंध को स्वीकृति देते हैं।

संदर्भ–ग्रंथसूची

1. नालंदा विशाल शब्दसागर– संपा. नवलजी, पृष्ठ 1407
2. आधुनिक हिंदी शब्दकोश– संपा. डॉ. गोविंद चातक, पृष्ठ 605.
3. आदर्श मराठी शब्दकोश– संपाद. डॉ. प्र.न. जोशी, पृ. 1260.
4. राही मासूम रजा के उपन्यांसों का समाजशास्त्रीय अध्ययन– डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन, पृ.–17.
5. जैनेंद्र के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ– डॉ. सुरेश गायकवाड, पृ.–41.
6. R.M. Maciver, Elements of Social Science, Page-7.
7. David L. Sills, Editor P.No. 578.
8. साहित्य सिद्धांत– रेनवेलेक और आस्टीन वारेन, अनुवादक– बी. एस. पालीवाला, पृ. 134.
9. बृहत साहित्यिक निबंधक– डॉ. रामसागर त्रिपाठी और शांति स्वरूप गुप्त, पृ. 304.
10. इतिहास और आलोचना– डॉ. रामवरसिंह, पृ. 145–146.